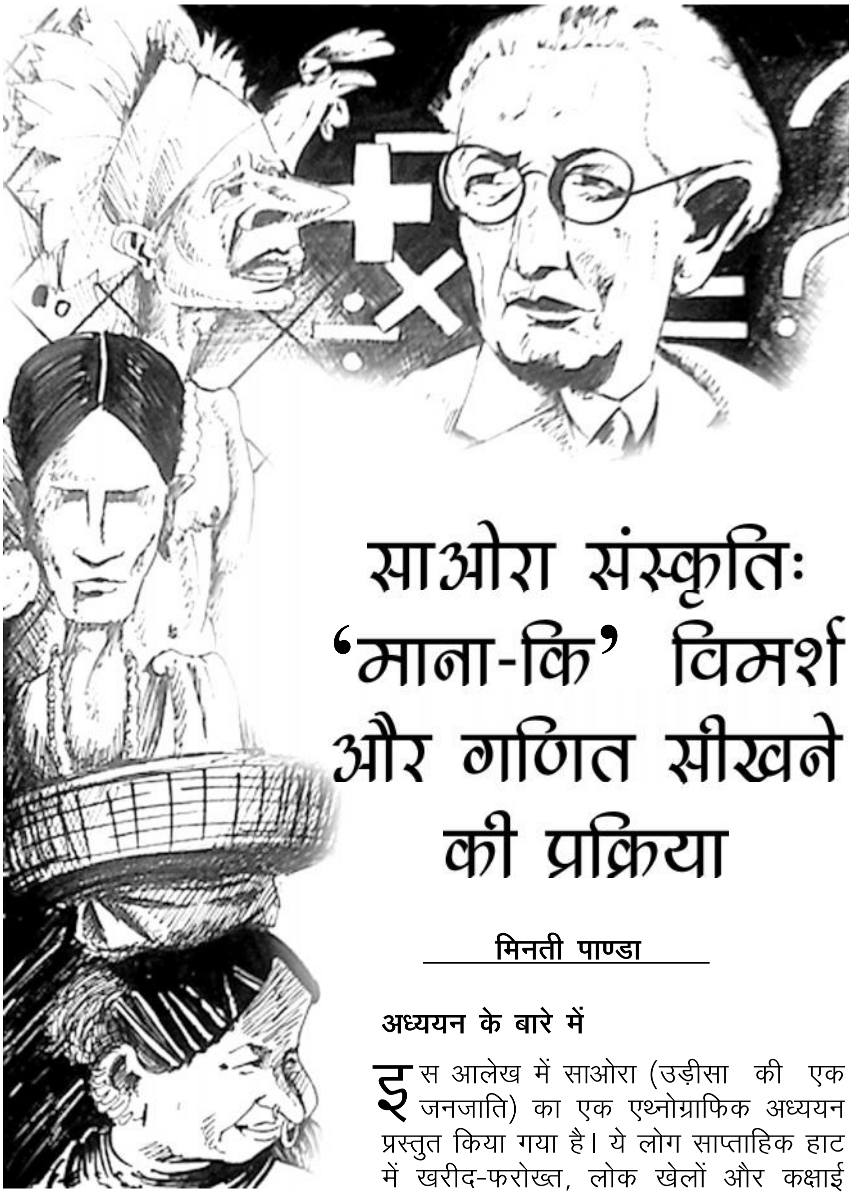

साओरा संस्कृतिः 'माना-कि' विमर्श और गणित सीखने की प्रक्रिया

मिनती पाण्डा

अध्ययन के बारे में

इस आलेख में साओरा (उड़ीसा की एक जनजाति) का एक एथ्नोग्राफिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। ये लोग साप्ताहिक हाट में खरीद-फरोख्त, लोक खेलों और कक्षाई

गतिविधियों में संलग्न हैं। नमूने का चयन दो गाँवों (उड़ीसा के गजापति ज़िले के सारलापडारा और सारंगा) से किया गया और उनका विस्तृत अध्ययन किया गया। सहभागियों के बीच की बातचीत को रिकॉर्ड करके विश्लेषण किया गया ताकि यह देखा जा सके कि वह क्या चीज़ है जो साओरा लोगों को गणितीय विमर्श में शामिल करती है, इन वार्तालापों के पीछे कौन-सी 'माना-कि' मान्यताएँ छिपी हैं, साओरा लोग इन मान्यताओं के बारे में किस तरह बातें करते हैं और वे विशिष्ट अर्थों तक कैसे पहुँचते हैं। उस तार्किक विमर्श की प्रकृति पर भी विचार किया गया है जो उपरोक्त 'माना-कि' संसाधनों, बातचीत से उभरने वाले गणितीय प्रोटोकॉल्स और उपलब्ध प्रोटोटाइप्स के बीच अन्त-र्क्रियाओं के परिणामस्वरूप मस्तिष्क के स्तर पर पैदा होते हैं। अध्ययन की चर्चा से पहले साओरा लोगों के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश का एक संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है।

साओरा लोगों का सामाजिक परिवेश

साओरा लोग उड़ीसा के गजापति ज़िले के वन क्षेत्र में निवास करते हैं। गजापति ज़िले की कुल साओरा आबादी 2,16,043 है (ज़िले की कुल आबादी का 47.88 प्रतिशत)। इनमें से 1,06,733 पुरुष और 1,09,310 महिलाएँ हैं (जनगणना 1991)।

ये लोग घास-फूस की छतों वाले, मिट्टी या पत्थरों से बने, मिट्टी से लिपे छोटे-छोटे घरों में रहते हैं। छतें नीची होती हैं, दरवाज़ों की चौखट लकड़ी की बनी होती है और बाहरी दीवारों पर सुन्दर चित्रकारी होती है। कुछ गाँव पक्की सड़कों से 25-30 कि.मी. की दूरी पर हैं। इस सर्वेक्षण में शामिल दो गाँवों में स्कूल नहीं थे। बच्चे पास के गाँव के प्राथमिक स्कूल में जाते थे। इन गाँवों में किसी ने भी हाई स्कूल पास नहीं किया है। साओरा मर्द और औरतें बहुत कम कपड़े पहनते हैं। कपड़े अपने हाथ से बुने होते हैं। साओरा औरतें कान, नाक, कलाइयों और टखनों में चाँदी के गहने पहनती हैं। वे गोदने भी गुदवाती हैं। जीविका के लिए साओरा लोग टेरेस और झूम खेती पर निर्भर हैं। श्रम के विभाजन की धारणा लगभग न के बराबर है। हर परिवार मकान बनाने से लेकर बगड़ा (धान के खेत) में काम करने, कृषि औज़ार बनाने, कपड़े बुनने और पशुओं की देखभाल करने जैसी हर किस्म की आर्थिक गतिविधि में काम करता है।

साओरा लोग साओरा भाषा बोलते हैं। इसकी अपनी कोई लिपि नहीं है। यह उड़िया भाषा से काफी अलग है जो इंडो-आर्य भाषा समूह में आती है। इस भाषा का प्रमुख गुण अर्ध-व्यंजनों की उपस्थिति है जो काफी स्पष्ट व मुखर है (एल्विन, 1955)। उपसर्गों, प्रत्ययों व मध्यसर्गों के भरपूर उपयोग के अलावा द्विवचन का उपयोग

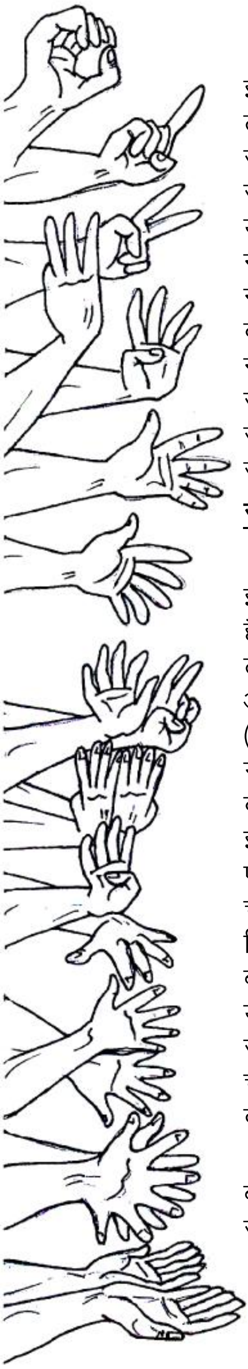

इसे उड़िया भाषा से भिन्न बनाता है जो गैर-आदिवासी उड़िया लोग बोलते हैं। इस इलाके में साओरा लोगों के लिए प्राथमिक सम्पर्क समूह हिन्दू उड़िया लोग हैं। एल्विन (1955) के मुताबिक साओरा भाषा काफी शुद्ध है और इसमें बहुत ही थोड़े-से उड़िया या तेलगू शब्द हैं (तेलगू दूसरा मुख्य सम्पर्क समूह है)। एल्विन ने पाया था कि देश भर में फैलते समय अधिकांश साओरा लोगों ने अपनी भाषा गँवा दी है और वे अब अपने आस-पास के लोगों की भाषा बोलने लगे हैं मगर उड़ीसा के पहाड़ी साओरा लोगों ने अपनी प्राचीन भाषा को सुरक्षित रखा है और बहुत ही थोड़े-से लोग कोई अन्य भाषा बोलते हैं। अलबत्ता, हाल के दिनों में सड़क से लगे गाँवों के साओरा लोगों का सम्पर्क उड़िया भाषा से हुआ है।

साओरा अंक प्रणाली

साओरा लोगों की अपनी अंक प्रणाली है हालाँकि उनके पास इनके संकेत नहीं हैं। वे 'शून्य' जैसी संख्याओं का उपयोग करते हैं और उनके पास अनन्त संख्याओं की अवधारणा है। साओरा लोगों के पास शून्य से बारह तक कुल तेरह बुनियादी अंक हैं - अरिबा (0), अबय (1), बगु (2), यागी (3), उंजी (4), मलय (5), तुरु (6), गुल्जी (7), तंजी (8), तिंजी (9), गल्जी (10), गलमुआई (11), मिगल (12)। तेरह से उन्नीस तक की संख्याओं की रचना इनके संयोजन से की जाती है जिसमें बारह को मूल इकाई माना जाता है। उदाहरण के लिए, बारह (मिगल) और एक (अबय) के मिश्रण से तेरह (मिगलबय) बनता है। और चौदह बनाने के लिए बारह (मिगल) और दो (बगु) को जोड़कर मिगलबगु बनाया जाता है। उन्नीस तक की संख्याएँ इसी तरह बनती हैं। उन्नीस के बाद की संख्याओं के लिए मूल इकाई कुड़ी यानी बीस हो जाती है। यहाँ भी कुड़ी के साथ 1-10 तक की संख्याओं को जोड़ा जाता है। जैसे बीस का मतलब है कुड़ी और चालीस यानी दो कुड़ी और पचास मतलब 2 कुड़ी और एक दस।

साओरा लोग एक हज़ार, दस हज़ार, सौ हज़ार वगैरह जैसी बड़ी संख्याओं का उपयोग भी करते हैं। वे जानते हैं कि 10 सैकड़ा का मतलब एक हज़ार होता है। इसलिए वे एक हज़ार

को गल्जी शा या माडी कहते हैं। साओरा माडी को एक और मूल इकाई के रूप में उपयोग करते हैं और इसके साथ 1 से 12 तक की संख्याएँ जोड़कर बड़ी संख्याएँ बनाते हैं। अगली बड़ी इकाई को पुती (20,000) कहते हैं। इससे बड़ी संख्याओं को पुती के गुणज के रूप में गिना जाता है।

साओरा लोगों की लगभग सारी गतिविधियों में गणित विभिन्न रूपों में पाया जाता है - एक वैचारिक ज्ञान से लेकर कुछ औपचारिक प्रस्तुतीकरणों तक। उन्हें जोड़, अंकगणितीय और ज्यामितीय श्रेणी, फलन, सम्भाविताओं और पूर्वानुमान जैसी जटिल गणितीय क्रियाओं का वैचारिक ज्ञान है। जोड़ के लिए साओरा शब्द 'माई माई' और बाकी के लिए 'तब तब' है। जोड़ के सिद्धान्तों का उपयोग घटाने व गुणा के लिए किया जाता है।

विभिन्न दैनिक कार्यों में गणितीय अवधारणाओं का उपयोग

उपरोक्त दो गाँवों में दैनिक कार्यों में गणितीय अवधारणाओं के उपयोग की खोजबीन एथ्नोग्राफिक अध्ययन के ज़रिए की गई। यहाँ एथ्नोग्राफिक अध्ययन से प्राप्त कुछ निष्कर्षों की चर्चा ऊपर प्रस्तुत किए गए सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य में की गई है। ये निष्कर्ष शोधकर्ता द्वारा विभिन्न परिस्थितियों में वयस्कों और बच्चों से अन्तर्क्रिया से उभरे हैं। शोधकर्ता की साओरा भाषा की समझ सीमित है। अतः साओरा दुभाषिए का उपयोग किया गया था। बातचीत का अँग्रेज़ी अनुवाद शोधकर्ता ने किया है। लम्बी बातचीतों में से मात्र प्रासंगिक अंश ही यहाँ दिए गए हैं।

प्रकरण 1

साप्ताहिक हाट में सुनेमी एस. (एसएस) से बातचीत। एसएस परीसाला गाँव की एक 55 वर्षीय निरक्षर महिला हैं। वे साप्ताहिक हाट में चावल बेच रही थीं। नीचे शोधकर्ता (आर) और सुनेमी एस. की बातचीत प्रस्तुत की गई है।

आरः यदि 1 कि.ग्रा. चावल का दाम 2 रुपए हो, तो 2 किलो चावल का दाम क्या होगा?

एसएसः नहीं, नहीं बाबू। हमें 2 रुपए किलो चावल कहाँ मिलेगा क्योंकि हमारे पास तो बीपीएल कार्ड भी नहीं है। हम चार रुपए प्रति किलो देते हैं।

आरः यदि एक किलो चावल की कीमत 4 रुपए है, तो दो किलो चावल कितने के होंगे?

एसएसः गल्जी (10) किलो के बाकुड़ी (40) रुपए, तो बागु (2) किलो के तंजी (8) रुपए।

आरः यदि चावल 8 रुपए किलो हो, तो आधा किलो चावल का कितना दाम होगा?

एसएसः तब तो दाम बहुत ज़्यादा होंगे, हम खरीद नहीं पाएँगे। मैं भूखी मर जाऊँगी।

प्रकरण 2

सितारा एम (एसएम), सरलापडारा गाँव के 50 वर्षीय पुरुष, उनके पास हाट में बेचने को तीन मुर्गे थे। वे प्रत्येक मुर्गे के लिए पचपन रुपए माँग रहे थे।

आरः नमस्ते। हम तीनों मुर्गे खरीदना चाहते हैं। इन तीनों की कुल कीमत कितनी होगी?

एसएम (काफी देर रुककर): मैं हिसाब नहीं लगा सकता क्योंकि आम तौर पर मैं एक आदमी को एक ही

मुर्गा बेचता हूँ।

आरः मगर हम तो तीनों मुर्गे खरीदना चाहते हैं।

एसएमः ठीक है... (कुछ देर तक मन में हिसाब-किताब करते हैं) कीमत होगी मलयकुड़ी याकुड़ीमलय (165 रुपए)। बाकुड़ीगल्जीमलय, बाकुड़ीगल्जीमलय, बाकुड़ीगल्जीमलय (पचपन, फिर पचपन और एक और पचपन)। बाकुड़ीगल्जी, बाकुड़ीगल्जी, और बाकुड़ीगल्जी मलयकुड़ी बाकुड़ीगल्जी (पचास, पचास सौ और फिर पचास, एक सौ पचास) फिर मलय, मलय और मलय माई माई, मिगल यागी (पाँच, पाँच और पाँच हुए पन्द्रह)। कुल मिलकार हो गए मलयकुड़ी

याकुड़ीमलय (एक सौ पैंसठ)।

प्रकरण 3

मुनिया, कक्षा 7 की विद्यार्थी है। उससे पाठ्यपुस्तक का एक सवाल हल करने को कहा गया।

आर: मान लो एक ट्रेन 40 कि.मी. प्रति घण्टे की एकरूप चाल से चलती है। इसे 50 कि.मी. की दूरी तय करने में कितना वक्त लगेगा?

एम (थोड़ा सोचकर): कोई ट्रेन या कोई भी चीज़ एकरूप चाल से कैसे चल सकती है?

लगभग ऐसा ही सवाल उसी कक्षा की सुमरी जी (एसजी) से भी पूछा गया।

आर: यदि दो ट्रेन 40 कि.मी. की चाल से एक-दूसरे से उल्टी दिशा में चल रही हैं और हरेक ट्रेन की लम्बाई 200 मीटर है तो उन्हें एक-दूसरे को पार करने में कितना समय लगेगा?

एसजी (फौरन जवाब दिया): ट्रेनें सीधी टकराएँगी और टूट जाएँगी।

विश्लेषण

ज़ाहिर है कि एसएस ने उपरोक्त गणितीय सवाल के 'यदि' पहलू पर ध्यान ही नहीं दिया। यही हाल दोनों स्कूली छात्रों का भी रहा। एसएस के लिए ये सवाल निरर्थक थे क्योंकि इनका उस क्षेत्र में चावल के वास्तविक दामों से कुछ लेना-देना न था। इसी प्रकार से कक्षा 7 के दोनों छात्रों ने भी दोनों सवालों के 'यदि' पक्ष पर कोई ध्यान नहीं दिया और इस वजह से आगे के गणितीय विमर्श में भागीदारी नहीं की। इसके विपरीत काफी मनुहार के बाद एसएम ने सही उत्तर बता दिया मगर इस तरह के गणितीय विमर्श में शरीक होने को लेकर एक शुरुआती प्रतिरोध तो था।

इन प्रकरणों से पता चलता है कि साओरा लोग गणितीय प्रस्तावनाओं को यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में आँकते हैं। काल्पनिक गणितीय सवाल उनके लिए ज़्यादा मायने नहीं रखते। इस बात की पुष्टि बच्चों के साथ किए गए साक्षात्कारों से भी हुई। साओरा स्कूली बच्चों ने अमूर्त गणितीय सवालों की

बनिस्बत उन गणितीय सवालों में ज़्यादा रुचि ली जिनमें वास्तविक स्थानीय घटनाओं/तथ्यों का समावेश था। यदि सवाल काल्पनिक होता, यथार्थ से बिलकुल अलहदा होता, तो साओरा लोगों की उससे जुड़े गणितीय विमर्श में शरीक होने की और अपनी कल्पना को खींच-खाँचकर उसका हल निकालने में ज़्यादा रुचि नहीं होती थी। इससे हमारी इस मान्यता की पुष्टि हुई कि इस संस्कृति में बच्चे और वयस्क, दोनों जिन रूपकों के साथ काम करते हैं या जिन रूपकों के ज़रिए सोचते हैं, वे अन्ततः भौतिक व सामाजिक यथार्थों से निर्मित होते हैं। यथार्थ की ओर झुकाव इतना ज़बर्दस्त है कि जब गणित के किसी सवाल में सामाजिक मापदण्डों का उल्लंघन होता है तो बच्चे और वयस्क नैतिक सवाल खड़े कर देते हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित सवालों के सन्दर्भ में साओरा बच्चों ने गणितीय समस्या की बजाय नैतिक मान्यताओं के प्रति अपनी प्रतिक्रिया दी।

"रघु नाम के एक आदमी ने 4 रुपए प्रति कि.ग्रा. के भाव से 100 कि.ग्रा. चावल खरीदा। उसने इस चावल में 5 कि.ग्रा. कंकड़ मिला दिए और फिर इसे 4 रुपए कि.ग्रा. के भाव से ही बेचा। अन्त में रघु को कितना फायदा हुआ?" साओरा बच्चों की पहली प्रतिक्रिया यह थी कि "किसी को चावल में पत्थर क्यों मिलाना चाहिए? उसे तो गाँव के मुखिया ने सज़ा देनी चाहिए।" बहरहाल, दो गैर-आदिवासी उड़िया बच्चों और एक साओरा बच्चे ने सवाल के 'यदि' पक्ष के अनुसार आगे बढ़ते हुए गणितीय समस्या पर ध्यान दिया। जब यही सवाल साओरा वयस्कों से पूछा गया तो उनकी पहली प्रतिक्रिया थी कि ऐसे व्यक्ति को गाँव से निकाल देना चाहिए। किसी ने भी इसे एक काल्पनिक गणितीय सवाल के रूप में देखने में कोई रुचि नहीं दिखाई। गैर-आदिवासी बच्चों और वयस्कों ने इसे एक काल्पनिक गणितीय सवाल माना और इस तरह के कोई नैतिक सवाल नहीं उठाए। इससे स्पष्ट है कि सांस्कृतिक मूल्य और मानक बच्चों में गणितीय विमर्श में शामिल होने की इच्छा को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ज़ाहिर है, गणित का मतलब सबके लिए एक जैसा नहीं होता।

प्रकरण 4

सारंगा आश्रम शाला (उड़ीसा के रायगड़ ज़िले के सारंगा ब्लॉक में स्थित आदिवासी आवासीय शाला) में छात्रों को सम्भाविता, क्रम-विनिमेयता और क्रम संयोजन (probabilities, permutation and combination)

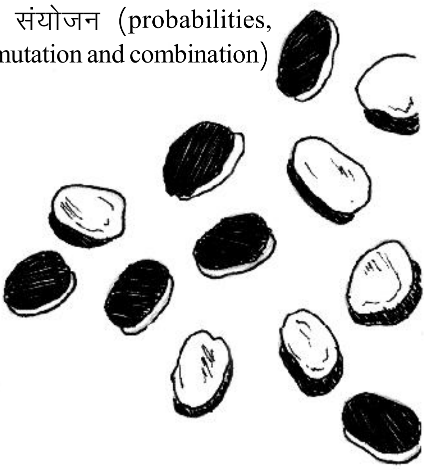

कक्षा 8 में पढ़ाए गए थे। 28 साओरा बच्चों और 7 उड़िया बच्चों को पाठ्यपुस्तक के पाँच सवाल दिए गए। मकसद था सम्भाविता की उनकी समझ का आकलन। इस परीक्षण में 24 साओरा बच्चे और 5 उड़िया बच्चे सम्भाविताओं की पर्याप्त समझ दर्शाने में असफल रहे। अगले दिन पूरी कक्षा से एक खेल खेलने को कहा गया जो साओरा गाँवों में बच्चों का प्रिय खेल है।[1]

लोक खेल

कक्षा को 4-4 बच्चों की 7 टोलियों में बाँट दिया गया। खेल ज़मीन पर बने एक चौखाने में इमली के बीज (चीयों) को उछालकर खेला गया। चीयों को घिसकर एक तरफ से सफेद कर लिया गया था जबकि दूसरा हिस्सा काला ही रहने दिया गया था। खेल में चार खिलाड़ी भाग लेते थे, हरेक के पास तख्ते पर तीन-तीन चीएँ होते थे। खेल में चार चीएँ फेंककर अंक हासिल होते थे। अंक इस आधार पर गिने जाते थे कि ज़मीन पर गिरने के बाद कितने चीयों के सफेद हिस्से और कितनों के काले हिस्से ऊपर आते हैं। चौखाने पर रखे चीयों को घर की ओर आगे बढ़ाने के लिए इन अंकों की ज़रूरत होती है। जो खिलाड़ी सबसे पहले अपने तीनों चीयों को घर पहुँचा दे वह जीतता है। मगर इस खेल का सबसे मज़ेदार हिस्सा चार चीयों को उछालना होता है। इसमें सम्भाविता की धारणा के आधार पर पेचीदा गणनाएँ शामिल होती हैं। एक साओरा छात्र (अनंगा आर.) ने सम्भाविता आधारित गणना निम्नानुसार समझाईः

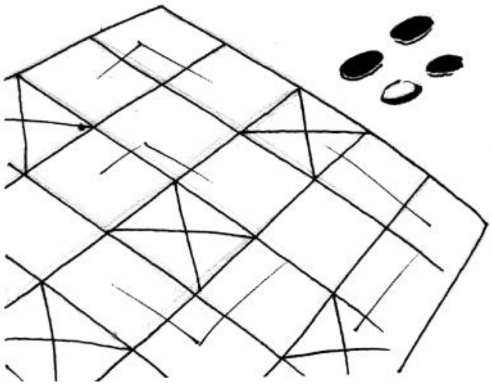

"यदि आप चार चीएँ फेंकते हैं, तो वे पाँच तरह से गिर सकते हैं - चारों सफेद, 3 सफेद 1 काला, 2 सफेद 2 काले, 1 सफेद 3 काले या चारों काले। यदि चारों सफेद आएँ, तो 8 अंक मिलते हैं (दो-दो अंक हरेक चीएँ के)। यदि तीन सफेद और एक काला आए तो तीन अंक गिने जाते हैं (सफेद का एक-एक और काले का शून्य)। इसी प्रकार से यदि तीन काले और एक सफेद आ जाए, तो सफेद का एक अंक मिलता है। और यदि चारों काले आ जाएँ, तो चार अंक होते हैं।"

बच्चों को टोलियों में इन नियमों की चर्चा करने को कहा गया। साओरा और उड़िया बच्चों को पता था कि चीएँ उछालने पर क्या-क्या परिणाम आ सकते हैं। मगर उनसे मिलने वाले अंकों की गणना को लेकर तीखी बहस

[1] इस खेल का दस्तावेज़ीकरण उस समय कर लिया गया था जब दोपहर में बच्चे गाँव में खेल रहे थे। सारे बच्चे इस खेल के नियमों से परिचित हैं।

हुई। उड़िया छात्रों का कहना था कि सफेद और काले के लिए अंकों का वितरण एकरूप होना चाहिए (सफेद के लिए एक अंक और काले के लिए शून्य), वे चाहे जिस संयोजन में आएँ। अर्थात् बहस अंक वितरण के पीछे निहित तर्क को लेकर थी। अन्ततः साओरा और उड़िया बच्चे इस बात पर सहमत हो गए कि अंकों की गणना साओरा लोगों के नियमों के आधार पर की जाएगी यानी चीयों के काले हिस्से के लिए अंक तभी मिलेंगे जब सारे चीयों का काला हिस्सा ऊपर आए, अन्यथा कोई अंक नहीं मिलेगा। सफेद के लिए एक-एक अंक मिलेगा मगर चारों सफेद ऊपर आने पर नियम अलग होगा। उस स्थिति में प्रत्येक सफेद चीएँ के लिए दो-दो अंक मिलेंगे। रोचक बात यह थी कि दोनों समूहों ने इस बात पर चर्चा की कि प्रत्येक पहलू के वेटेज की गणना उनके ऊपर आने की आवृत्ति के आधार पर की जाएगी। किसी संयोजन के आने की आवृत्ति जितनी कम होगी, उसका वेटेड स्कोर उतना ही अधिक होगा।

कई छात्रों ने जानकारी का विश्लेषण औपचारिक गणितीय ढंग से नहीं किया जैसे (4स + 0का), (3स + 1का), (2स + 2का), (1स + 3का) और (0स + 4का)। मगर वे मन में वितरण के पैटर्न को लेकर सजग थे हालाँकि मात्र 4 छात्र ही स्पष्ट रूप से यह बता पाए कि सम्भावनाएँ पाँच हैं। अन्य छात्र, इस बात को व्यक्त न करने के बावजूद, खेल को बखूबी खेल पाए।

विश्लेषण

सम्भाविता की अवधारणा को समझने के लिए इस खेल में तरह-तरह कि 'माना-कि' मान्यताएँ ज़रूरी होती हैं, जैसे "विभिन्न घटनाओं को अलग-अलग वेटेज दिया जा सकता है; बिरली घटनाओं को ज़्यादा मूल्य या वेटेज दिया जा सकता है"। जब शोधकर्ता ने बच्चों से आम जीवन से बिरली चीज़ों के तुलनात्मक मूल्य के उदाहरण देने को कहा, तो एक साओरा बच्ची झुमकी ने जवाब दिया, "मेरे पिताजी ने कहा कि यदि वे मेरे लिए ज़्यादा कपड़े खरीदेंगे तो मैं कपड़ों की इज़्ज़त नहीं करूँगी।" एक अन्य छात्र का जवाब थाः "हमारे गाँव में कोई मेट्रिक पास नहीं, इसलिए मेरी माँ कहती है कि यदि मैं स्कूल पूरा कर लूँगा तो मैं गाँव में सबसे प्रमुख व्यक्ति बन जाऊँगा। सब लोग मेरी इज़्ज़त करेंगे।" तीसरे बच्चे ने कहा, "मुझे खीर अच्छी लगती है, क्योंकि यह सिर्फ त्यौहारों के दिन बनती है।" इन जवाबों से साफ है कि इस तरह के वार्तालापों ने किसी घटना/चीज़ के होने की सम्भावना और उसके महत्व के बीच परस्पर सम्बन्ध का एक प्रोटोटाइप तैयार किया होगा।

गौरतलब है कि शिक्षक बच्चों में सम्भाविताओं की यह समझ विकसित नहीं कर पाए थे, हालाँकि, उन्होंने पाठ्यपुस्तकों के सवालों पर बार-बार

काम किया था। इसके विपरीत एक लोकप्रिय खेल ने बच्चों को स्वेच्छा से सम्भाविता की अवधारणा के विविध पहलुओं से जुड़ी गतिविधि और चर्चा में शरीक होने के लिए तैयार कर दिया। पता चला कि एक साथ कई सारे कारक प्रभावी थे जिन्होंने सम्भाविता के अर्थ को पुख्ता बनाने का काम किया। ये चन्द 'माना-कि' मान्यताएँ हैं जो खेल के हर नियम और समर्थक प्रोटोकॉल्स के पीछे निहित हैं। इन 'माना-कि' मान्यताओं और प्रोटोकॉल्स के बीच की तार्किक कड़ी से इस जानकारी का प्रोसेसिंग करने और अर्थ तक पहुँचने के लिए आवश्यक संज्ञानात्मक क्रियाविधियाँ प्राप्त हुई थीं।

सही मायने में तो यह खेल सम्भाविता की अवधारणा को समझने का प्रोटोकॉल नहीं है। वास्तव में प्रोटोकॉल तो इस बात की व्याख्या करने का एक खास तरीका है कि खेल को किस ढंग से खेला जाए और अंकों का वितरण किस तरह हो। यह मानना उपयुक्त ही है कि इस खेल में निहित 'माना-कि' मान्यताओं और परिवेश में उपलब्ध चन्द समर्थक प्रोटोटाइप्स और उपलब्ध प्रोटोकॉल्स (जैसे जीवन में दुर्लभ चीज़ें और घटनाओं के उदाहरण और उनके तुलनात्मक महत्व) के बीच काफी पेचीदा अन्तर्क्रिया होती होगी। इस मामले में सम्भाविता का अर्थ (चीज़ों व घटनाओं की सम्भावित आवृत्ति और उनके तुलनात्मक मूल्य) बाहर से नहीं आया था। विमर्श ने स्वयं इसका अर्थ विकसित किया था। दूसरे शब्दों में, जब तक छात्र व्याख्या के इन तरीकों का विकास न कर लें, या समुदाय में आविष्कृत या विकसित तौर-तरीकों में स्वेच्छा से भागीदारी न

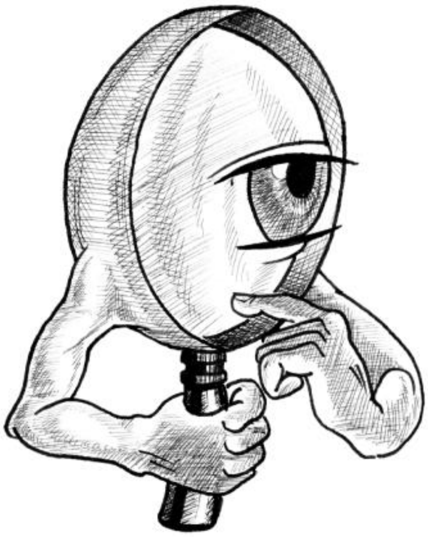

करें, तब तक यह खेल सम्भाविता और तुलनात्मक वेटेज प्रणाली जैसी अवधारणाओं के गणितीय अर्थ के तार्किक स्रोत की भूमिका नहीं निभा सकता।

निष्कर्ष

इन प्रकरणों से दो बातें उभरती हैं। पहली, किसी संस्कृति में गणित एक खास किस्म का विमर्श होता है। दूसरी, बच्चे स्वेच्छा से इस विमर्श में

भागीदार बनकर गणित सीखते हैं। साओरा संस्कृति के विभिन्न पक्ष - विश्व दृष्टि, मूल्य, और मानक, आर्थिक क्रियाकलाप, भौगोलिक परिस्थितियाँ वगैरह - वह सन्दर्भ निर्मित करते हैं जिसके तहत सारे प्रोटोकॉल व प्रोटोटाइप निर्मित होते हैं और समुदाय के सदस्यों को उपलब्ध होते हैं। गणितीय क्रियाओं/वस्तुओं में निहित 'यदि' मान्यताओं का वैधीकरण इन प्रोटोटाइप और प्रोटोकॉल्स के रूबरू किया जाता है। इन तीन पहलुओं - 'माना-कि' मान्यताएँ, प्रोटोकॉल्स और प्रोटोटाइप्स, जो सज्ञानात्मक भी हैं और सांस्कृतिक भी - की परस्पर अन्तर्क्रियाएँ बातचीत के लिए संसाधन पैदा करती हैं और गणित सीखने में मदद करती हैं। ऊपर चर्चित प्रकरण साफ दर्शाते हैं कि साओरा गणितीय प्रस्तावनाओं का आकलन व निर्णय यथार्थ के नज़रिए से करते हैं। यथार्थ से कटी हुई काल्पनिक गणितीय समस्याएँ उनके लिए ज़्यादा सार्थक नहीं होतीं। यथार्थ के प्रति रुझान और 'यदि' मान्यताओं के प्रति प्रतिरोध इतना मज़बूत है कि जब किसी गणितीय सवाल में सामाजिक मानकों और नैतिकता का उल्लंघन होता है, तो साओरा बच्चे नैतिक सवाल उठा देते हैं और गणित के सवाल में उतनी रुचि नहीं दर्शाते।

प्रत्येक गणितीय सवाल में निहित 'माना-कि' मान्यताओं और सांस्कृतिक रूप से उपलब्ध प्रोटोटाइप व प्रोटोकॉल, जो गणितीय सोच को बढ़ावा देते हैं, के बीच पेचीदा अन्तर्क्रिया अर्थ-निर्माण की प्रक्रिया को गहरे में प्रभावित करती है। वर्तमान अध्ययन में जब भी साओरा लोगों को 'माना-कि' मान्यता और सांस्कृतिक मूल्यों के बीच असंगति नज़र आई, तो उन्होंने उस विमर्श को जारी रखने में कम रुचि दर्शाई। अतः यह माना जा सकता है कि गणितीय विमर्श की परिपाटियाँ और गणित सीखना मात्र संज्ञानात्मक समझ से काफी आगे जाते हैं और इन्हें एक वैध सांस्कृतिक प्रक्रिया माना जाना चाहिए। गणितीय संज्ञान की समझ सांस्कृतिक रीति-रिवाज़ों की चर्चा के बगैर अधूरी है।

मिनती पाण्डाः जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली से शिक्षा का सामाजिक मनोविज्ञान विषय में पीएच.डी.। ज़ाकिर हुसैन सेंटर फॉर एजुकेशनल स्टडीज़, स्कूल ऑफ सोशल सांइसेज़, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय में सोशल सायकोलॉजी ऑफ एजुकेशन की प्रोफेसर हैं।

अँग्रेज़ी से अनुवादः सुशील जोशीः एकलव्य द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

सभी चित्रः निशित मेहताः विज़ुअल आर्ट्स में स्नातक। वर्तमान में स्वतंत्र रूप से चित्रकारी और लेखन कार्य कर रहे हैं।